डॉक्टर को भगवान मानने का चलन कहाँ चला गया

"राम" नहीं रहे, आप भी अब राम भरोसे न रहिये....

ग्राउंड जीरो से विवेक की पड़ताल

अर्थशास्त्र का कौन सा फार्मूला लगाया जाए कि स्वयं भी पेशेवर पढाई के दौरान लुटने और अव्यवस्था के शिकार हुए चिकित्सक की संवेदनाएं किसी मरीज को देख कर मरें नहीं और वह सिर्फ मरीज की जेब काटना ही अपना लक्ष्य न बना ले? ऐसी परिस्थिति बने कि संवेदनशील जैसे शब्द को तिलांजलि देना ही उसके हक में न हो।

हरियाणा के शिक्षा मंत्री अनिल विज जिन्हें फतवा देने का शौक है और 'आयुष्मान' नामक तथाकथित सर्व सुलभ स्वास्थ्य योजना के जनक देश के प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी, दोनों में से किसी ने वह मॉडल आज तक पेश नहीं किया जिसके दम पर देश के डॉक्टरों और मरीजों के अच्छे दिनों का राग अलापना सही लगे। चिकित्सा जैसी मूलभूत सुविधा को हर स्तर पर निजी हाथों में लुटाते रहने का काम सभी सरकारें कर रही हैं। ऐसे में अनिल विज किस ताव से ये कहने की बेशर्मी दिखा सकते हैं कि डॉक्टरों को दो वर्ष प्रदेश में अनिवार्य सेवाएँ देनी ही होंगी। आइये एक नजर ग्राउंड जीरो पर डालते हैं।

"राम बहुत अन्याय कईलैं" (राम ने बहुत अन्याय किया) ये शब्द तीन प्रदेशों में हार के बाद भाजपा को दिया जाने वाला ताना नहीं बल्कि 62 वर्षीय शोभा राय का अपनी बेटी की मौत पर भगवान् राम को दिया जाने वाला उलाहना है। भारतीय समाज में चिकित्सक को भगवान् के समकक्ष रखा जाता है, कम से कम तब जब जान पर बनी हो। पर क्या चिकित्सक में भी भगवान् के वही तत्व विद्यमान हैं जो सत्तर-अस्सी के दशक का भारतीय सिनेमा दिखाया करता था?

शोभा राय के चार बच्चों में सबसे बड़ी बेटी इंदु का देहांत 38 वर्ष की आयु में दो वर्ष लम्बे कोमा के बाद हो गया। इंदु एक दुर्घटना के बाद एम्स ट्रामा सेंटर ले जाई गई जहाँ चिकित्सकों ने अथक प्रयास से उसका जीवन दो वर्ष तक बचाए रखा। इस बीच श्रीमती राय ने शायद ही कोई कर्मकांड हो जो संपन्न न किया हो, जिसमे गाय को रोज मूंगदाल और पंडितों को दान दक्षिणा 'नितकर्म' बन गया। हवन, गंगाजल और महामृत्युंजय जाप के माध्यम से भी खूब प्रयास किया गया। लाखों रुपया स्वाहा होने के बाद भी इंदु को बचाया न जा सका। इस एक वाकये ने शोभा राय के जीवन की पुरानी धारणा को बदल दिया और राम का त्याग करा सिर्फ एम्स के चिकित्सकों को नए रामावतार के रूप में उनके लिए स्थापित किया।

हरीमंदिर पाण्डे, आजमगढ़ उत्तर प्रदेश के निवासी, पत्नी ठकुरा देवी की आँखों के इलाज के लिए एम्स आया करते थे। 75 वर्ष की आयु में एम्स की लाइनों के धक्के खाने के बाद चिकित्सक तक पहुंचना एवरेस्ट चढ़ने जैसा ही है। पांडे ने बताया कि पर ज्यों ही डाक्टर के सामने मरीज के लिए रखे स्टूल पर ठकुरा देवी बैठती थीं त्यों ही एक मिनट में नयी तारीख दे कर चिकित्सक उनको रफा दफा कर देता था। पत्नी अब नहीं रहीं पर पहले ही बार बार के चक्करों ने पांडे का साहस तोड़ दिया था और उन्होंने एम्स आना छो? दिया। उनका मानना है कि यहाँ चिकित्सक असंवेदनशील हो चुके हैं।

फरीदाबाद बीके अस्पताल के मरीजों की उपेक्षा के चर्चे स्थानीय अखबारों में आम हो चले हैं। यहाँ होने वाली घटनाएं ऐसी हैं कि कभी-कभी राष्ट्रीय अखबारों में भी इस अस्पताल को स्थान मिलने लगा है। कम से कम उपलब्धियों वाले इस अस्पताल की ये एक बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है।

मेडिकल शिक्षा का ढांचा ही लूट की प्रेरणा देता है

भारत में 479 मेडिकल कॉलेज हैं, जिनमे से 22। कॉलेज केंद्र, राज्य सरकार, ट्रस्ट और सोसाइटी मिल कर चलाते हैं। बाकी के बचे कालेज निजी हाथों में हैं। सरकारी कालेजों को भी जानकारी के लिए तीन स्तर पर बांटा जा सकता है। पहला वे जिसे नोमिनल की श्रेणी में रख सकते हैं, यानी जहाँ फीस नाम मात्र की है। दूसरे वे जहाँ 3-4 लाख रुपये तक का खर्च आता है। अमूमन ये राज्य सरकार के अधीन चलने वाले कालेज हैं। तीसरे वे जिनमें मैनेजमेंट कोटा के तहत भी दाखिला होता है और इसकी फीस 8-15 लाख तक हो सकती है। इन सभी श्रेणियों में देश की लगभग 70000 सीटों का 45 प्रतिशत ही सरकारी संस्थानों के हिस्से है, बाकी के 55त्न निजी हाथों में हैं।

प्राइवेट कालेजों में एमबीबीएस की औसत फीस 30 से 40 लाख रुपया है। और यदि आप पीजी भी कर रहे हैं तो 1 करोड़ तक का खर्च उठाना पड़ सकता है। निजी मेडिकल संस्थान की 38000 एमबीबीएस सीटों में 10000 सीटें पूरे कोर्स के लिए 50 लाख रुपये तक में बिकती हैं और कुछ में तो एक करोड़ तक का भी खर्च वहन करना शामिल है। इसके ब्रेकअप पर नजर डालें तो 2-3 लाख नीट कोचिंग, 15-30 लाख सिक्यूरिटी डीपोजिट, बोर्डिंग और लॉजिंग 3 लाख प्रतिवर्ष और फीस 30 से 50 लाख के औसत के साथ कुल लगभग 60 लाख से 1 करोड़ यदि पीजी भी शामिल करें तो हो जाता है।

इतने भारी इन्वेस्टमेंट के बाद रिटर्न पर गौर करें तो शायद सरिता, गृहलक्ष्मी जैसे उपभोक्ताओं और मंत्री अनिल विज जैसे नीति निर्धारकों का सही नक्शा दिख जाएगा। निजी अस्पताल में चिकित्सक को 25-40 हजार रुपये और सरकारी में 40-50 हजार तक बतौर वेतन प्राप्त होता है। निजी अस्पतालों में तो देते कम हैं और दस्तखत ज्यादा की राशि पर करवाते हैं। ये शोषण का एक अलग विषय है। जाहिर सी बात है इतनी बड़ी राशि घरों में तो होगी नहीं तो बैंक से लोन लेना पडेगा ही। नौकरी मिलने के बाद लोन चुकाने का औसतन खर्चा 10 वर्ष के लिए 60 हजार रुपये प्रतिमाह बैठने का अनुमान है। यदि नौकरी नहीं मिली तो इस सूरतेहाल छात्र और अभिभावक क्या करेंगे इसका अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं।

इतनी भारी राशि खर्च करने के बाद मामूली सा वेतन, ऊपर से हर माह की बैंक किश्त देना सो अलग। भारत का कौन सा समाज या तबका है जो इतनी भारी राशि अपने बच्चों की शिक्षा पर खर्च कर सकता है। सरकारी सीटों पर चिकित्सकों की संख्या 45 प्रतिशत है जो पूरी भरी भी नहीं जा पा रही और मरीजों का आंकड़ा आसमान छू रहा है। तो क्या हम चिकित्सक पर भगवान् न बने रह पाने की तोहमद लाद सकते हैं? वहीं निजी संस्थानों में हर चिकित्सक का टार्गेट सेट है कि कितनी कमाई उसके द्वारा संस्था को होती है, उसी पर उसके वेतन और रोजगार के गारंटी निर्भर होगी। तो क्या उसका सेल्समेन की तरह बर्ताव अपराध की श्रेणी में शामिल किया जाए?

30 वर्षीय सरिता इस अस्पताल के चिकित्सों को घटिया कह कर संबोधित करती है। और सरिता द्वारा उनके लिये उच्चारित अन्य अपशब्दों का सार तत्व निकालें तो असंवेदनशील से ज्यादा कुछ नहीं समझती, क्योंकि उनका एक बच्चा चिकित्सकों की लापरवाही से जीवित पैदा नहीं हो सका। एक अन्य बच्चा जो पैदा हुआ भी वो इन्ही चिकित्सकों की घोर लापरवाही के कारण दृष्टिहीन पैदा हुआ। सरिता का पति एक रिक्शाचालक है, इसलिए वो स्वयं को शापित मानती हैं बीके अस्पताल में ही आने के लिए।

सरकारी अस्पतालों की बानगी तो जगजाहिर है, पर क्या निजी अस्पतालों में भी तस्वीर ऐसी ही है? 35 वर्षीय गृहलक्ष्मी को एक छोटी सर्जरी जो 10 मिनट में सम्पन्न हुई, के लिए दिल्ली के साकेत स्थित मैक्स अस्पताल में 28000 रुपये अदा करने पड़े। क्योंकि गृहलक्ष्मी के पास क्रयशक्ति है तो उनका मानना है कि मैक्स में वो सिर्फ सरकारी अस्पतालों के धक्कों से बचने आती हैं वरना सिर्फ छोटी सी सर्जरी के इतने पैसे समझ से परे है। गृहलक्ष्मी ने बताया कि सर्जरी होने के पहले और बाद तक उनकी चिकित्सक उनसे फोन पर बराबर बनी हुई है और उनका हाल चाल लेती रहती है। परन्तु इतने के बाद भी लक्ष्मी को हमेशा यही अहसास होता है कि वो एक चिकित्सक से नहीं किसी सेल्सगर्ल से बात कर रही हैं जिसे ग्राहक को अपना उत्पाद बेचना है।

इसी प्रकार का मामला सचिन का भी। एक दुर्घटना में दाहिनी कलाई की कई नसों के कटने पर 30 वर्षीय सचिन गुरुग्राम के मेदान्ता अस्पताल पहुंचे। खून बहुत निकल जाने की बात तो चिकित्सक सचिन को बताते रहे परन्तु इलाज की जल्दी बिल्कुल नहीं दिखा रहे थे। सचिन ने बताया कि उन्हें लग ही नहीं रहा था कि ये डाक्टर उनको बचाना चाहते हैं अपितु एक वरिष्ठ चिकित्सक तो सचिन को अपने औजारों से उन कटी हुयी नसों को उठा - उठा कर दिखा रहा था। जब सचिन ने पुछा कि ये उन्हें क्यों दिखा रहे हैं तो डाक्टर का जवाब था "ताकि आप समझ लें कितना खर्चा होगा और क्यों।"

उक्त वक्तव्यों में ऐसा कुछ नहीं है जो भारतीय समाज का कोई भी आम नागरिक जानता न हो। भारत में लगभग हर जिले के अस्पताल, नर्सिंग होम, क्या निजी और क्या सरकारी, परिस्थिति अनुसार मुनाफे को अंजाम देते पाए जाते हैं। पर क्या हर आम नागरिक यह भी जानता है कि इन सबके पीछे क्या कारण है? क्या कारण है कि अब वो सिनेमा नहीं बनता जिसमें एक चिकित्सक भगवान् की तरह अवतरित होता है। इसे जानने के लिए आवश्यकता है एक चिकित्सक के उस पहलू को समझने की जहाँ वह भी इसी संसार का एक हाड-मांस का आदमी है।

हरियाणा सरकार के स्टार स्वास्थ्य मंत्री अनिल विज चिकित्सकों को मुअत्तल करने और उनको सरेआम बेइज्जत करने के लिए कुख्यात हैं, पर शायद मंत्रीपद का रोब दिखाने से अधिक न उनकी कूवत है न नीयत। विज ने डब्लूएचओ के मापदंडों का हवाला देते हुए चंद रोज पहले ही बताया कि जहाँ 1000 मरीजों पर एक चिकित्सक होना चाहिए वहीं भारत में 1800 मरीजों पर एक चिकित्सक है। बेहतर होता कि विज ये बात अपनी ही पार्टी के मुख्यमंत्री या प्रधानमन्त्री को बताते या खुद इसपर अमल करते। विज ने कहा कि अब हरियाणा प्रदेश में एमबीबीएस करने वाले सभी अभ्यर्थियों के लिए यह जरूरी बनाया जाएगा कि वे दो वर्ष प्रदेश में ही अपनी सेवाएँ दें।

ऐसी घोषणा किन आधारों और शोध के मद्देनजर की जा रही है, यह कह पाना फिलहाल मुश्किल है। परन्तु क्या अनिल विज जानते हैं कि उनकी ये हांकने की नीति, 1800 पर एक डाक्टर के आंकड़े पर शायद ही प्रभाव डाले। सीधे कहें तो मेडिकल के छात्रों को ऐसा नजरिया हतोत्साहित ही करेगा और शायद वे अपना प्रोफेशन ही बदल लें। लाखों खर्च करने के बाद कोई समाज के हक में बिना लालच काम करे, यह आसामान्य ही होगा। जी हां, लाखों और कहीं - कहीं करोड़ भी।

2002 के अपने एक फैसले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि सरकारी सहायता प्राप्त नहीं करने वाले निजी संस्थान प्रोफेशनल कोर्स के लिए अपनी फीस खुद तय करने के लिए स्वतंत्र हैं परन्तु फैसले में फायदा कमाने जैसा कोई शब्द नहीं इस्तेमाल किया गया था। इसे चुनौती देने में तत्कालीन वाजपेयी सरकार ने न कोई अपील की और न ही नये सिरे से कानून बनाया। तब भी 2016 तक एक निजी कॉलेज को नॉन प्रॉफिट आधार पर कालेज चलाना था। परन्तु "सबका साथ सबका विकास" की कसम खाये प्रधानमंत्री मोदी ने अब हर साल 10 प्रतिशत फीस बढ़ा लेने का लाइसेंस दे दिया है। 10 प्रतिशत का अर्थ क्या है ये समझने की जरूरत है क्या ?

सब कुछ निर्धारित होता है सरकारी नीतियों से। और हम बतौर जनता क्या इन मुद्दों पर अपने निर्वाचन क्षेत्र के एमपी - एम्एलए का कॉलर पकड़ते हैं? नहीं, हम बिछे होते हैं कि आओ और हमे रौंद दो अपने नारों से, अपने जहरीले भाषणों से और बाँट दो हमारे समाज की संवेदनाओं को भी धर्म और जाति के आधार पर। यदि हम ऐसे न होते तो बीते चुनावों में मतदान का मुद्दा शिक्षा और चिकित्सा रहा होता या आने वाले में होगा।

पर नहीं, न ये मुद्दा था न होगा, मुद्दा है "राम"। "राम" जो खुद कट्टरपंथियों के हाथों की कठपुतली बने बैठे हैं। और जिन डॉक्टरों में लोग साक्षात् राम देखते थे वो बैंक से लोन ले कर निजी संस्थानों के लुटेरे सेल्समेन डाक्टर बनने को मजबूर हैं। शोभा राय जैसा कोई अपवाद ही बचेगा शायद जो राम को दोषी और चिकित्सक को राम मान सकने का माद्दा रखेगा।

प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक सतीश कुमार ने अपने स्वामित्व में एजीएस पब्लिकेशन्स, डी-67, सैक्टर-6, नोएडा से मुद्रित करवा कर 1 डी/2बी.पी. नियर हार्डवेयर चौक, एनआईटी फरीदाबाद से प्रकाशित किया। Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06